13 खेलों से समता : चुनौतियाँ और सम्भावना

इन्दुमति एस.

भारत में खेल–शिक्षा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य ऐसी दक्षताएँ प्रदान करने का है जो स्कूल, घर और समुदाय में मनो–सामाजिक मसलों से निपटने में मदद करें। इसका अर्थ क्या है? खेल हममें कई तरह की व्यक्तिगत और सामाजिक क्षमताओं को प्रभावित करते हैं, जैसे आत्मविश्वास, अनुशासन, दैहिक सजगता, नियम–पालन, निष्पक्षता, भावनाओं से निर्वाह, परस्पर–आदरभाव से रहना सीखना, हार–जीत से दो–चार होना, टीमवर्क, और संवाद तथा सम्प्रेषण की दक्षताएँ। इस प्रकार खेल समाजीकरण की प्रक्रिया के तौर पर अहम भूमिका निभाते हैं, इनसे हम सामाजिक मूल्य सीखते हैं। इनसे कुछ सामाजिक दक्षताएँ हासिल करने में भी मदद मिलती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के भूतपूर्व महासचिव कोफी अन्नान खेल को एक ऐसी भाषा मानते हैं जिसे सब समझते हैं, जो लोगों को एक–दूसरे के करीब ला सकती है, जो शान्ति लाने के तमाम प्रयासों में मददगार हो सकती है, और जिससे सहस्राब्दी विकास–लक्ष्यों की प्राप्ति के हमारे उपक्रम को मदद मिल सकती है।[1] खेलों में सरहदें लाँघ जाने की ताकत होती है। तो क्या भारत में हम खेलों के जरिए वर्ग, जाति, लिंग सम्बन्धी अपने आपसी भेदों को पाटकर एक समावेशी माहौल का निर्माण कर सकते हैं?

हमारे स्कूलों में कुछ परिस्थितियाँ आम हैं, जैसे शारीरिक शिक्षा के पीरियड में लड़कियों का किसी पेड़ के नीचे बैठे रहना; शारीरिक तौर पर चुनौती का सामना कर रहे बच्चों का कक्षा में ही रुके रहना; लड़कियों का खेल के मैदान की सीमा–रेखा के पास खड़े रहना और मैदान में खेल रहे लड़कों की हौसला–अफजाई करना; मोटे, अत्यधिक वजन के और शारीरिक रूप से अलग बच्चों के हिस्से में अम्पायर या स्कोरर का काम आना। उपरोक्त उदाहरणों से पता चलता है कि हमारे देश में खेलने का मौका कुछ चुनिंदा बच्चों को ही मिल पाता है।

चौदह साल की एक लड़की कहती है, ''मुझे बास्केटबॉल पसन्द है, मैंने अपनी स्कूल टीम का प्रतिनिधित्व किया है, लेकिन अब मैंने खेलना छोड़ दिया है क्योंकि प्रैक्टिस के लिए शाम के छह–साढ़े छह बजे तक रुकना पड़ता है, जिसकी इजाजत मेरे माता–पिता मुझे नहीं देते।'' ऐसा ही किस्सा किसी और लड़की का भी था। वह एक उम्दा एथलीट थी और अण्डर–13 में प्रदेश के स्तर तक खेल चुकी थी। उसने बहुत से पुरस्कार जीते लेकिन

यौवनारम्भ होते ही उसने खेलना छोड़ दिया क्योंकि इसके लिए सप्ताह के अन्त में और स्कूल के बाद पुरुष ट्रेनर के साथ अभ्यास करना पड़ता था। प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए अपने ट्रेनर या कोच के साथ दूसरे शहरों की यात्रा करनी पड़ती थी। लड़कियों के लिए एक खास उम्र (यानी यौवन शुरू हो जाने) के बाद खेल–प्रतियोगिताओं आदि में भाग लेना वर्जित माना जाता है। कई माता–पिता अपनी बेटियों के लिए खेल को एक उपयुक्त करिअर नहीं मानते। उनकी मान्यताएँ

महिलाओं की भूमिका को लेकर उनके संस्कारों पर टिकी होती हैं। मैं जिस स्कूल में पढ़ाती थी, वहाँ हमने फुटबॉल की एक मिली–जुली टीम बनाने की कोशिश की। पर लड़कों को अपनी टीम में लड़कियों का होना जमता नहीं था; वे सोचते थे कि लड़कियों के होने से उनकी टीम कमजोर पड़ जाएगी। इस वजह से बहुत कम लड़कियों ने ही मैदान में आने में रुचि दिखाई। 15 मिनट की दौड़ा–दौड़ी के बाद सुस्ताने के लिए बैठ जाना लड़कियों के लिए आम था। धीरे–धीरे करके हमारी उस मिली–जुली टीम में एक–दो लड़कियाँ ही रह गईं। जो लड़की खूब मजे ले–ले कर फुटबॉल खेला करती थी, उसे लड़कों जैसा समझा जाता था और बाकी लड़कियाँ उससे कन्नी काट कर रहती थीं।

जेण्डर के मुद्दे से निपटने के बाद आइए अब एक और महत्वपूर्ण कारक, वर्ग की बात करें। गरीब परिवार का एक लड़का क्रिकेट खेलने में उस्ताद था। वह स्कूल टीम के लिए चुन लिया गया। लेकिन अपने लिए खेल के जूते और किट खरीदने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। उसकी माँ को लगता था कि जो समय वह क्रिकेट खेलने में गंवाता है, वह उसे पीने का पानी लाने के लिए हाथ बँटाने में खर्च करना चाहिए। यानी खेलकूद तभी हो जब सब बुनियादी जरूरतें पूरी हो जाएँ। बहुत लोगों के लिए खेल एक महँगा शौक हो सकता है और उनके लिए खेल पाना फुर्सत मिलने पर ही सम्भव हो पाता है। ठीक यही बात शारीरिक तौर पर अलग सक्षमता के लोगों पर भी लागू होती है। भेदभावमूलक प्रवृत्ति और व्यवहार खेलों में भी चले आते हैं और इनके जरिए लगातार बने रहते हैं। आमतौर पर स्कूली खेलों में शारीरिक रूप से असमर्थ बच्चों की अनदेखी होती रही है। या तो उन्हें कक्षा में ही बैठे रहने की हिदायत दी जाती है या फिर वे मैदान के बाहर बैठे–बैठे ही अपने दोस्तों को क्रिकेट या फुटबॉल खेलते हुए देखते रहते हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह तो साफ है कि जहाँ एक ओर खेल प्रत्येक को शामिल होने का बराबर मौका दे सकते हैं, समावेशी होते हैं, वहीं दूसरी ओर स्कूलों के कई बच्चे इस पूरी प्रक्रिया से बाहर ही रहते हैं।

अनुसन्धान भी यही दर्शाते हैं कि बात चाहे भागीदारी की हो या उपलब्धि की, वर्ग, जाति और जेण्डर की असमानताएँ खेलों में भी अपनी भूमिका निभाती हैं। समावेश की चुनौतियाँ और सीमाएँ इन कारणों से हैं :

क) सामाजिक–आर्थिक / सांस्कृतिक बाधाएँ : कई खेल तो उच्च वर्ग के बच्चों के अलग से विशेषाधिकार होते हैं क्योंकि उन्हीं के पास खेलने और कोई शारीरिक गतिविधि करने का पर्याप्त समय होता है। जहाँ तक महिलाओं का सवाल है, उत्पादन और प्रजनन में उनकी भूमिका सम्बन्धी प्रचलित धारणाएँ उन्हें घर से बाहर निकलने से रोकती हैं। आमतौर पर लड़कियों के लिए घर से बाहर खेलने जाने की मनाही होती है। सड़क के खेल लड़कों के माने जाते हैं और लड़कियों को चारदीवारी के अन्दर ही खेलने की सलाह दी जाती है।

ख) सुरक्षा सम्बन्धी सरोकार : मैदान के पास चल रहा निर्माण का काम, मलबे, ऊबड़–खाबड़ मैदान और कंटीले तार वगैरह जैसी चीजें बच्चों की सलामती को लेकर चिन्ता का कारण बन सकती हैं। खेल के मैदान पर घटी कोई भी दुर्घटना बच्चों के जीवन को प्रभावित कर सकती है। गरीबों के सन्दर्भ में तो यह और भी ज्यादा जोखिम भरा हो सकता है, क्योंकि वे तो इलाज के लिए पैसों का जुगाड़ भी नहीं कर सकते।

ग) बुनियादी सुविधाएँ : कपड़े बदलने के लिए साफ–सुथरे और ठीक–ठाक कमरे, घर से खेल के मैदान तक की पहुँच और साधन, खासकर महिलाओं और शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के लिए बरसात और भीषण गर्मी के दौरान प्रकाश और अन्य सुविधाओं का होना। ज्यादातर स्कूलों के पास अपना एक ठीक–ठाक सा खेल का मैदान भी नहीं है, और खेल–कूद के सार्वजनिक केन्द्रों में भी इस तरह की सुविधाओं की कमी है।

घ) आदर्श नायकों की कमी : आमतौर पर कोच या ट्रेनर पुरुष ही होते हैं और महिलाओं तथा शारीरिक चुनौती का सामना करने वाले व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व तो बहुत ही कम होता है। स्कूल शारीरिक रूप से चुनौती का सामना करने वाले विद्यार्थियों के प्रति तो संवेदनशील हो सकते हैं लेकिन जरूरी नहीं कि उनके पास एक ऐसा ट्रेनर हो जो स्वयं शारीरिक तौर पर अक्षम या कमजोर शिक्षक हो।

ड) खेल–शिक्षा : अब चूँकि अध्यापकों की प्रवृत्ति जल्दी से जल्दी पाठ्यक्रम खत्म करने और छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार करने की होती है, इसलिए

शारीरिक शिक्षा एकदम आखिरी प्राथमिकता बन जाती है। खेलों को हमेशा पाठ्येतर गतिविधि माना जाता है। स्कूलों में खेलकूद के संसाधन ही सबसे कम होते हैं। खेलों का उद्देश्य पूरी तरह से भुला दिया जाता है और खेलने के नाम पर छात्र बिना कोच के बस बॉल को इधर–उधर करते रहते हैं। एक खेल, उसका इतिहास, उसके नियम और उसके मकसद के बारे में न तो छात्रों को कोई जानकारी दी जाती है और न ही कभी उनसे इन तमाम मुद्दों पर कोई बातचीत की जाती है।

समावेशी हो पाने की चुनौतियों और सीमाओं के कई कारण हैं, जैसे सामाजिक–आर्थिक/सांस्कृतिक बाधाएँ, आदर्श नायकों की कमी, बुनियादी खेल सुविधाओं का निम्न स्तर, खेलों को अन्य विषयों के साथ जोड़ने की बजाय उन्हें एक पाठ्येतर गतिविधि की तरह बरतना।

सीमाएँ तो कई हैं लेकिन मेरे खयाल से खेलों को और अधिक समावेशी बना पाना और उन्हें सार्थक उद्देश्य के लिए उपयोग में ला पाना सम्भव है।

खेलों का एकीकरण

शारीरिक शिक्षा को अन्य विषयों के साथ एकीकृत करना, जोड़ना जरूरी है। एकीकृत दृष्टिकोण होगा तो खेल बाकी विषयों से कटे नहीं रह पाएँगे, एक समग्रता और व्यापकता आएगी तथा विद्यार्थी खेलों में भाग लेने की आवश्यकता महसूस करेंगे। और क्योंकि हर किसी में भाग लेने और सीखने की आवश्यकता का अहसास आएगा, अध्यापकों को भी ऐसे तरीके, ऐसी विधियाँ खोजनी पड़ेंगी जिनके चलते खेल और अधिक समावेशी बन पाएँ। खेलकूद को दिन की पढ़ाई खत्म हो जाने के बाद एक पाठ्येतर गतिविधि की तरह बरतने की बजाय इसे अन्य विषयों के साथ एकीकृत किया जाएगा तो आगे चलकर पाठ्यचर्या में इसको उचित स्थान मिल पाने की उम्मीद भी बँधेगी।

खेल–शिक्षा के प्रति शिक्षा शास्त्रीय दृष्टिकोण

जानते–बूझते, सोचे–समझे तरीके से मिली–जुली टीमें बना कर कोच या प्रशिक्षक महिलाओं की भूमिका से सम्बद्ध प्रचलित जड़–छवियों को तोड़ सकते हैं। वे अपने विद्यार्थियों को खेलों में लड़के और लड़कियों की समान भागीदारी के बारे में शिक्षित कर सकते हैं और जेण्डर–भूमिकाओं के प्रचलित मिथकों पर चर्चा कर सकते हैं। ऐसे खेल चिह्नित किए जाने चाहिए जिनकी प्रकृति समावेशी हो। इस सन्दर्भ से जुड़ने वाले पारम्परिक खेल चिह्नित किए जा सकते हैं और थोड़े–बहुत फेर–बदल के साथ उन्हें इस्तेमाल किया जा सकता है। बदलावों के साथ खेलों को सर्व–समावेशी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी देशों में बैठे–बैठे ही खेला जाने वाला वॉलीबॉल खेल बनाया गया है ताकि शारीरिक चुनौती का सामना कर रहे 'अक्षम' व्यक्ति भी उसमें भाग ले सकें। स्कूल अपने विद्यार्थियों को सिर्फ लोकप्रिय खेलों में ही नहीं, हर किस्म के खेलों में भाग लेने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। एक सत्र के लिए किसी एक खेल को रखा जा सकता है, और इस तरह बारी–बारी से हर सत्र में एक नया खेल खेला जा सकता है। इससे सभी छात्रों को सब प्रकार के खेल खेलने का मौका मिलेगा और इसके आधार पर वे अपना पसन्दीदा खेल चुन सकते हैं।

समग्रता वाला दृष्टिकोण

खेलों में शामिल रहने के लिए परिवार का साथ बहुत जरूरी है। इसलिए खेलों में बच्चों की भागीदारी को लेकर समाज और अभिभावकों के साथ एक सार्थक संवाद करने से मदद मिलेगी। खेलों में लड़कियों की भागीदारी को लेकर समाज में फैली भ्रान्तियों को तोड़ने की दृष्टि से सूचना और शिक्षा अभियान चलाए जा सकते हैं।

बुनियादी सुविधाएँ और प्रोत्साहन

प्रतिभा को पहचानने और उसे प्रशिक्षण देकर निखारने के लिए हमारे स्कूल सर्वसुलभ स्थान हो सकते हैं। खेल–छात्रवृत्तियों, वंचितों को प्रोत्साहन, और जिला या प्रदेश स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए यात्रा भत्ता देने जैसे उपक्रमों के द्वारा सभी वर्ग, जाति, और जेण्डर के बच्चों को खेलों जैसे एक सार्वजनिक मंच पर लाया जा सकता है। यही नहीं, स्कूलों के परिसर तमाम खेल–सुविधाओं के सुलभ स्थान भी बन सकते हैं। इसके लिए हमारे स्कूलों को अपने यहाँ खेलों की तमाम जरूरी सुविधाओं के निर्माण कार्य के सचेत प्रयास करने होंगे।

खेल–अनुसन्धान

खेलों में भागीदारी और उपलब्धि, समेकित/एकीकृत खेल

पाठ्यचर्या की कारगरता और ऐसे ही कई विषयों पर अनुसन्धान हो सकता है। मिली–जुली स्कूल टीम जैसी किसी भी पहल का अध्ययन और उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। इस तरह के अध्ययनों से खेल–शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हो सकता है और समावेशी वातावरण की ओर बढ़ा जा सकेगा। आकांक्षी विद्यार्थियों को खिलाड़ियों की जीवनियों और अन्य ऐसे दस्तावेज आदि के अध्ययन से प्रेरित किया जा सकता है। महिला–खिलाड़ियों और ओलिम्पिक खेलों से इतर अन्य खेलों में उपलब्धि प्राप्त खिलाड़ियों पर पुस्तकों के माध्यम से भी छात्रों को खेलों में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

पश्चिमी देशों में खेलों के जरिए समता के लिए कामयाब हस्तक्षेप हुए हैं। व्यवस्थाबद्ध समर्थन से निश्चित ही खेल अपनी तमाम सीमाओं को लाँघ समस्त जाति, वर्ग, योग्यता और जेण्डर के बच्चों को खींचकर एक–साथ खेल के मैदान में ला सकते हैं।

सन्दर्भः

1. कोफी अन्नान कहते हैं, ''खेल हमारी वह सार्वभौमिक भाषा हैं जो लोगों को एक–दूसरे के करीब ला सकती है, शान्ति लाने के हमारे तमाम प्रयासों को जिससे बल मिल सकता है, और सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के हमारे उपक्रम को मदद मिल सकती है''। खेलों में वह माद्दा है जो इन्हें सरहदें पार करा जाता है। अब सवाल यह है कि क्या हम भारत में खेल, वर्ग, जाति और जेण्डर की दूरियों को पाट एक सर्व–समावेशी माहौल बना सकते हैं?

मॅरिएन, एम. (2005). प्रमोटिंग जेण्डर इक्विटी थ्रूरू स्पोर्ट (खेल के जरिए लैंगिक–समता को प्रोत्साहित करना)। खेल एवं विकास पर हुए द्वितीय मॅग्लिन्जेन सम्मेलन (स्विट्जरलैण्ड) में प्रस्तुत।

http://www.toolkitsportdevelopment.org/html/resources/67/67094AB4-2046-4ACC-B2EE-EC0C1969B645/06_promoting_gender_equity.pdf,accessed on July 1, 2011.

इन्दुमति *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के संसाधन केन्द्र (यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेन्टर) के अध्ययन और अध्यापन (अकॅडमिक्स एण्ड पेडगॉजी) प्रभाग में काम करती हैं। टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज से शिक्षा में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त सुश्री इन्दुमति ने अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन से जुड़ने से पहले एक विज्ञान अध्यापक, कन्टेन्ट डॅवलपर और विषय समन्वयक सब्जेक्ट को–ऑर्डिनेटर के तौर पर काम किया है। जेण्डर और शिक्षा, नारीवादी विज्ञान, विज्ञान की प्रकृति, और शिक्षक का पेशेवर विकास जैसे विषयों में उनकी गहरी रुचि है। उनका ई–मेल पता है – s.indumathi@azimpremjifoundation.org*